

॥ श्री गोकुलेशो जयति ॥

॥ श्री रमणेशो जयति ॥

श्री कल्लोल जी ग्रन्थ

त्रयोदश, चतुर्दश एवं पंचदश

(श्रीमद् गोकुलेश लीलायां रसाब्धी सुधासिंधौ)



-: मूल :-

श्री कल्याण भट्ट मठपति जी

-: टीकाकार :-

पंडित लोकनाथ जी (गोकुलिया)

लैया वासी

श्री महाहोत्सव संवत् 2059

जपामि नित्यं श्री रमणाधिनाथान ॥

स्मरामि नित्यं श्री रमणाधिनाथान ॥

भजामि नित्यं श्री रमणाधिनाथान ॥

नमामि नित्यं श्री रमणाधिनाथान ॥

दो शब्द -- प्रस्तावना

किसी भी कार्य के लिये बहोत से कारण होते हैं ॥ इस प्रकार पंद्रह कल्लोलजी छपाने के लिये भी वाके ही जीव की सामर्थ नहीं है पर कोई शुभ कार्य शुभ समय में हमारी बुद्धि में ये बात आई कि पूरा पंद्रह कल्लोलजी पांच पुस्तक में प्रसिद्ध करें और जो श्री रमण प्रभु ने श्रम लिया है उनको पूर्ण योगदान देकर सार्थक करें ॥

श्री कल्याण भट्टजी ने श्री गोकुलेश प्रभु की जो लीला ४०००० चालीस हजार श्लोक में गायी है जिनका पंद्रह कल्लोलजी हैं और बहुत ही उच्च कक्षा की संस्कृत भाषा में है ॥ पंडित लोकनाथजी को जो मूल पंजाब के लहीया गाम में रहते थे उनके ऊपर कृपा करके श्री रमण प्रभु ने हिन्दी -- ब्रजभाषा -- गिरवाण भाषा में भाषानुवाद करवाये ॥ मेरे पिताश्री हिम्मतलाल जिनको समाज हीमतलाल ओवरसीयर के नाम से जानते हैं उन्होंने पहेला, सातवां, नवमां, बारहवां और पंद्रहमा कल्लोलजी हस्त लिखित उतारे और बाकी का दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, आठवां, दसवां, ग्यारहवां और तेरहवां श्री राजजी की कृपा से वैष्णवों ने दया करके हमें पधराये और हमने हाथ से लेखन किया ॥ श्री रमण प्रभु के अनन्य समाज को इन ग्रंथ रत्न का पान करने का लाभ मिले ऐसी भावना से हमने संवत् २०५४ में श्री रमण अभिधान सुधा आठवां पुस्तक की प्रस्तावना में यह बात समाज के सामने रखी और जामनगर में पू० बुआजी के श्री ठाकुरजी पधारे हते तब हम भी वहां दर्शन को और बड़ोदा पधारने की विनती करने गये थे वहां हमें श्री बुआजी के श्री ठाकुरजी के सन्मुख अ.सौ. ज्योत्सना

बहेन हरकिशनदास ने हमें बताया कि श्री कल्लोलजी प्रसिद्ध करने का उनका मनोरथ है और हमने तुरन्त ही कोई भी सोचने का समय लिये बिना वहां श्री ठाकुरजी के सन्मुख सम्मती दे दी ॥ जामनगर जाने का कार्य तो एक ही था कि पूज्य बुआजी के श्री ठाकुरजी को बड़ोदा पधराने की विनती करनी थी यह कार्य तो हो गया साथ में श्री कल्लोलजी प्रसिद्ध करने का मनोरथ की फल प्राप्ति हुई ॥ जब पूज्य बुआजी बोरीवली बिराज रहे थे उस समय में नडीयाद में था और बुआजी से मेरा पत्र व्यवहार था पू० बुआजी की मेरे पर कृपा भी बहोत थी और बुआजी की इच्छा थी कि मेरे यहां पधारे पर यह बात वैसे ही रह गई ॥ वो भी बड़ोदा में श्री ठाकुरजी पधारे मेरे घर भी पधारे इस प्रकार पूर्ण हुई और साथ में श्री कल्लोलजी के मनोरथ भी ॥ पहेला और दूसरा श्री कल्लोलजी एक पुस्तकजी में बम्बई में वंचन का मनोरथ था उस समय संवत् २०५५ में प्रसिद्ध किया ॥ वैसे हर साल श्री महाउत्सव पर श्री कल्लोलजी ग्रंथ रत्न श्री राज की कृपा से प्रसिद्ध करने का सौभाग्य हमें मिल रहा है और अब संवत् २०५९ में यह चक्रवर्ती राज का १३, १४ और १५ पन्द्रहवां श्री कल्लोलजी प्रसिद्ध होने पर यह ग्रंथराज की पूर्णता हो रही है ॥ जीव तो जीव ही है दोषों से भरा हुआ है, इनकी कोई सामर्थ नहीं कि ऐसा अलौकिक कार्य कर शके ॥ श्री रमणेश अनन्य समाज की इस चक्रवर्ती ग्रंथ राज पूरा होने में बहोत सी शुभेच्छा कारण भूत हैं ॥ हम सब समाज के वैष्णवों के ऋणी हैं ॥

इन पुस्तकजी में हमने तीन कल्लोलजी का समन्वय किया है ॥ तेरहवां कल्लोलजी में से सिर्फ भूमिका और पंद्रहवां तरंग जिनमें श्री वीरबाईजी ने श्री महाप्रभुजी के अंचल का दर्शन किया यह तरंग लिया है ॥ तेरहवां कल्लोलजी की भूमिका में से कुछ प्रकार यहां देना उचित समझ के दिया है वैसे तो हमने श्री रमण अभिधान सुधा पहेला पुस्तकजी संवत् २०४६ में प्रसिद्ध किया है उनका पन्ना ३९ पर है ॥ श्री पंडित लोकनाथजी आज्ञा करें हैं "आपने महा उदार करुणा सों प्रथम रात्रि में वैसो अनुभव दिखायके वैसे ही खेंचके बुलायके महा रसमय फल दाता श्री गुरुजी ने जो अपने महारस क्षीरोदधी प्राणप्रभु के महा रसात्मक श्री कल्लोलजी को जो दान कियो सो

तो महा अनिर्वचनीय है ॥ तामें हु जो आपने वाके भाषांतर करवे रूप योग्यता दान पूर्वक महा रसास्वाद दान दियो है केवल आपकी महा कृपा ही महा उदार शिरोमणी है ॥ तामें हु भाषांतर कर करायके, आपने बड़े हर्ष सों जो अंगीकार कियो कि सुन्यो सुनायो, हृदय में राख्यो कि हर्ष कृपा के महा उच्छलन बल सों महा उदार करुणा सों जो हर्ष रस कृपा रसादी दान कियो सो कासुं कहे जांय श्री गुरुजी हु बहुत बेर पूर्ण करायवे की इच्छा आज्ञा हु करी पीछे पत्र में सुचना करी कि कितनो घटे है ॥ तू आ जा, तो कोई उपाय करें पर मेरे ही मंद भाग्यन सों जानो न भयो सो रह गयो ॥ तामें १३ तेरहवां कल्लोलजी तो महा निरावरण उच्छलित निस्तुष रस सागर ही है ॥ परन्तु मेरे पास अपूर्ण है -अब तो राज ने कृपा करके पूर्ण कराय दिये हैं ॥ और निरावरण रसात्मकता देख मेरो हु विचार हतो कि याको भाषांतर तो विचार के ही करेंगे तामें प्रकार हु ऐसो ही बनतो आयो ॥ऐसे प्रकार सों १३ तेरहवां कल्लोलजी को भाषांतर नहीं बन सक्यो इतने में श्री गुरुजी तो श्री प्राणनाथजी के विशेष आग्रह सुं आधुनिक जीवन के भाग्यन की मंदता को सूचना करत ही आप निकट पधारे आसुर व्याहमोह परोक्ष दिखायो ॥ तासुं अब तो कलियुग को बल बढ़ गयो है ॥ अन्य जीवन की बुद्धि कि योग्यता में कहा जाय -- अपनो ही प्रकार ऐसो है ॥ ऐसो प्रतिदिन बढ़ रह्यो प्रकार है -- सत्य ही है -

- अब तो भाषांतर कैसे बने -- श्री गुरुजी ने अनुभव में आज्ञा हु करी -
- मैंने आपके दर्शनावसर में पूछ्यो कि अब का करूं - आज्ञा करी कि इहां रहेके लिखो कि न लिखो तेरी इच्छा -- यह आज्ञा करी ॥ समझ में नहीं आयो कि अब ऐसे समय में -- अहो किनके लिये लिखे कौन को सुनावे वो आनन्द योग्यता, रस कहां -- तो हु अब कोई महा भाग्य वारे जीव के प्रबल भाग्य कि विनके परवश श्री गुरुजी की आपकी महा उदारता सों उच्छलित कृपा कि वा कृपा भरी इच्छा कि वैसे स्वयं आप ही अपने कृपापात्र प्यारे खिलोना षंडदेव की मोपर तो परम उपकार करवे वारे जीवन प्राणप्रभु के दिवावने वारे बड़े उपकार कृपा प्रेम स्नेह तन मन धन सों करवे वारे सर्वस्व दाता महा दयालु विचित्र रस हर्ष के बढ़ायवे वारे सदा संग बड़भागी

वियोग रस पुष्ट विकल महात्मा ऐसे बाबूलाल (वापुलाल कालोल वारे) के अंतःकरण में विराजमान होयके वाके द्वारा बड़ो ही आग्रह पूर्वक बारंबार प्रार्थना प्रेम विनय-कोप दीनता-बल विवेक विचार वैराग्य निरोध प्रबोध खेंचातानी के अनेक प्रकार कर -- मोसुं भाषांतर प्रतिज्ञा कराय लीनी है ॥ तथा यामें डरपूं हुं तासुं कछुक विनय अवश्य देखनी पीछे याको पढ़नो सो यह है कि यदि श्री गुरुजी की कृपा सों जाकों या आधुनिक प्राकट्य लोक वेदातीत महा रसमय शुद्ध पुष्ट पुरुषोत्तम -- महा अछूते महा निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह -- निस्तुष शृंगार रसात्मक श्री गोकुलनाथ प्रभुन के -- कि आपके वैसे महा रसमय लोकवेदातीत निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह अछूते शुद्ध पुष्ट रसमय महद भक्तन के स्वरूप को ऐसो ज्ञानरूप शुभ भाग्य प्राप्त भयो होय सो तो याकुं निरखो और जाकुं यह शुभ भाग्य नहीं मिल्यो होय सो तो भलो वैष्णव हु होय पर याकुं तो भूलके हु नहीं देखे ॥ इच्छा होय तो उसे भाग्यन की प्राप्ति अर्थ प्रार्थना करे जासुं याके दर्शन की योग्यता मिले ॥

श्री पंडित लोकनाथजी ने जो अपनी मनोव्यथा दिखाई है उनही के अनुसंधान में श्री कल्याण भट्टजी ने पंद्रहमा कल्लोलजी के ६७ तरंग में जो फलश्रुती दी है इनमें से मैं यहां लिख रहा हुं "अहो संसार के अनेक प्रकार के दुःख रूप वन की अग्नि सों पीड़ित होय रहे कि तासुं वा दुःख सुं तरवे योग्य संसार सागर को तरवे योग्य की इच्छा वारे वा पुरुष को भगवान पुरुषोत्तम श्री गोकुलाधीशजी की लीला कथा रस की सेवा के बिना तरवे को साधन निर्भय नाव कि जहाज नहीं है तो यह श्री गोकुलेश महाप्रभुन की लीला कथा रस सेवन रूप ही महा दिव्य नाव है बड़ो निर्भय रस सुखदाय परमानंद मय जहाज है ॥श्री महाप्रभुजी अपनी कृपा समुह सों प्रेम कर या श्री ग्रंथ रत्नादि के पद्य पदादि रूप द्वार सों कि वैसे वैसे और हु मनोहर प्रकार सुं प्रकट कर कर अपने कृपापात्र भक्तवरन प्रति जो दान करें हैं वाकुं जे अभागे जन ग्रहण नहीं करें हैं कि अभिमान भर सुं उलटा यों कहें हैं कि यह तो ग्रंथ कर्ता की चतुरता है कि प्रगल्भता है कि पांडित्य विशेष है यह कहेके वाकों मानें नहीं है तासुं दंडवत प्रणाम नहीं करें हैं कि सिर माथे पे नहीं धरें हैं रोम हर्ष पूर्वक स्तुति नहिं करें हैं कि हृदय सों

गाढ़ आलिंगन नहीं करें हैं वे अभागी जन तो प्रभु के महा अपराधी हैं ॥
महाप्रभु के वैसे महा उपकारन को नाश करवे वारे हैं वैसे दुष्टन में यह महा
दुर्लभ रस कबहु नहीं प्रकाश करनो ॥ कि वैसे दुष्ट कि कृतघ्नि कि मूर्ख
कि पापाशक्त कि मत्सरता सुं जिनकी बुद्धि ग्रस्त होय रही है कि अहंकारी
कि भक्तन की निंदा परायण कि कुटिल जे जन हैं विनमें हु यह महा दुर्लभ
रस कबहु नहीं प्रकाश करने कबहु नहीं सुनानो ॥

पात्रापात्र के भेद समझना मुश्किल है इस कारण से हमने पहले से
ही रस की लीला जो सब नव रस में श्रृंगार रस श्रेष्ठ है और जहां जहां
श्रृंगार रस की पराकाष्ठा है वहां हमने हाथ को रोक दीये हैं ॥ तोहु तरंग
५९ और ६० में से रंचक प्रसंग लिये हैं ॥

पात्रापात्र के भेद के वारे में तरंग ३४ में रूपण सहिगल ने श्री
महाप्रभु से विज्ञापना कर एक माला मांगी श्री महाप्रभुजी ने दीनी तो तुरन्त
ही दुसरे भक्त ने श्री महाप्रभुजी को दो माला दीनी वहां श्री प्राणनाथजी
आज्ञा करें हैं “श्रेष्ठ पात्रन के प्रति जो दान कियो जाय वाको श्रेष्ठ फल
बिना यत्न के ही तब ही अनुभव कियो जाय है ॥ द्वि-गुनी मिली तासुं सुंदर
श्रेष्ठ पात्र के प्रति ही श्रेष्ठ वस्तु अवश्य ही देनी ॥ रूपण सहिगल को भाव
गूढ़ हतो और श्रेष्ठता बताई है ॥

श्री कल्याण भट्टजी स्तरंग ३७ में अपने वारे में और इस ग्रंथ रत्न
के वारे में आज्ञा करें हैं कि “चिंतामणी भट्टजी है जो सबन में दीक्षित ऐसे
प्रसिद्ध है जाके गुण सर्वोपर विराजमान हैं प्राणनाथजी हु जाको बहुत वार
ही बहुत प्रकार सुं ही सदा आदर देवें हैं तथा प्राणनाथ के हु जो अत्यन्त
अनुकूल चले है तथा सार्वभौम म्लेच्छपति प्रसिद्ध अकबर के अनुकूल होयवे
सुं वा वा समय में प्राणनाथ की विविध प्रकार की सेवा जानें करी है जो
सदैव ही प्राणनाथ के हृदय में अत्यन्त जाग रही है ॥ वा दीक्षित चिंतामणी
भट्टजी को पुत्र हों मठपति कल्याण भट्टजी नाम सुं महाप्रभुन को दास हुं ॥
जाकुं निरुपाधिक करुणा के सागर श्री महाप्रभुजी ने अपने निकट ही बैठायो
है ॥ सघन प्रेम सुं संभाषण हु करे है कि निरंतर वैसे वैसे अनुग्रह हु करे
है तथा जो अत्यन्त गोपनीय है कि कि कथनीय हु नहीं है कोउ और के

आगे तो कबहु कह्यो हु नहीं है सो सो बात कि महाप्रभुन के स्वरूप, स्वरूपनिष्ठा संबंधी जो कछु मैंने जा प्रकार सुं पूछ्यो है सो सो हु वैसे रस भरे प्रकार सुं ही विलास पूर्वक आपने उत्तर दान सुं जताये हैं ॥ कि सदैव मंद हास्य सुं ही मेरे सगरे ही संदेह हु निवर्त कर दिये हैं ॥ तथा सुन्दर अनुमोदन हु करे हैं कि कृपा अत्यन्त हु करे है ॥ कि महा रहस्य हु जतावे है कि महाप्रभुन के जन्म प्रकरण की वार्ता जो जो मैंने पूछी हैं सो हु आपने स्पष्ट ही कही हैं सो मैंने प्रथम कल्लोल में स्पष्ट कह्यो है ॥ और जो जो रहस्य प्रश्न किये हैं विनको हु राज ने महा उच्छलित रस कृपा भर सुं ही उत्तर दान कियो है ॥ चौदहवें कल्लोलजी में स्पष्ट कर कह्यो है ॥ अहो प्रथम कल्लोल में कहे अनुसार महाप्रभुन ने मोकुं सगरे महद भक्त श्री गोकुलभाई श्री मोहनभाईजी के निरखत ही मधुर रीति सुं वा समय में प्रकट भये अपने अनुग्रह रूप ऊंचे गजराज पर हु चढ़ायो है यामें रंच हु संशय नहीं है ॥

सो अब सगरे जगत में वेग ही उद्धार करवे लिये कि विनके प्रति अपने चरण कमलन के दान करवे लिये कि विनके प्रति कि मेरे प्रति हु वर्णन किये के आगे वर्णन करवे योग्य महा मधुर वा वा फल राज को हु अनुभव करायवे लिये मेरे में साक्षात् स्वयं ही महा रस सागरमय स्वरूप सुं प्रवेश करके ही स्वयं ही या लीला रस सागर रसग्रंथ महा चक्रवर्ती को प्रकट करावत ही भूतल में याको कर्ता मेरे को ही आपने प्रतिष्ठित करायो है ॥ तथा अहो अब ही इहां ही प्रथम कहे सगरे पुरुषार्थ महा फलन के दान करवे लिये सिद्ध करी है अपनी सगरी शक्ति जामें ऐसो जो अपने महा अनन्य कि अपने ही स्वरूपात्मक कि वा स्वरूप निष्ठा सुं और सगरे हु फलन कुं तृण जैसे हु न गिनवे वारे जे शृंगार रस सागर में निमग्न श्री गोकुलभाईजी कि श्री मोहनभाईजी प्रभृति भक्तराज कि चन्द्रमुखी भक्त सुन्दरीन को संग है जो महा दुर्लभ है कि महाप्रभुन के मिलाप सुं हु जो महाविशेष है कि सगरे हु पुरुषार्थन को वेग ही सिद्ध करवे वारो महा फल रूप है वाको हु आपने मेरे प्रति दान कियो है ॥ अहो मेरे को आपने का का प्रकार सां कृतार्थन को चक्रवर्ती भाव को नहीं प्राप्त कियो है कि अनेक प्रकार सुं ही राज ने

मोकुं कृतार्थ चक्रवर्ती बनायो है ॥ हे प्राणनाथजी अपने कृपा के वश होयके ही मोकुं अपने श्रीमुख महा क्षीरसागर सुं प्रकटे महामधुर वे वे वचनामृत पान कराये हैं प्राणनाथ ने रस रूप पान कराये वा वचनामृत को वैसे वैसे पान करके तथा रसावेश सुं अब वर्णन किये आपके महा कृपापात्र श्री गोकुलभाईजी प्रभृतिन को हु अब एकांत में वा वचनामृतन को निरंतर पान हु कराय रह्यो है तासुं अहो अत्यन्त प्रमाण रूप मोकुं प्राणप्रिय महाप्रभुजी ने बल सुं ही अत्यन्त ही दुर्लभ अपने अंतरंगता कि कृपा समुह कि हर्ष प्रेम को पात्र ही बनाय दियो है ॥ तथा अपनी महा रस कृपापात्र सगरे ब्रज सुन्दरीन में जो कोउ अनिर्वचनीय ब्रजरत्ना है जाको १३ तेरमे कल्लोल में कछुक वर्णन मैंने कियो है जाके भाव रूप अर्बन सागर महा सुन्दर और महा दृढ़ हैं ॥ कि अहो जो वैसे मेरे द्वारा अत्यन्त ही प्रिय प्राणनाथ के वचनामृत लोभ सुं निर्यत्न कोउ अनिर्वचनीय अद्भुत सुन्दर पूर्ण भीतर रमणमय महा रस को अत्यन्त अनुभव कर रही है ॥ अहो जो वा प्राणनाथ के न मिलाप सुं प्रकटे महा ताप को निवर्त कर कर हु फिर फिर वा महा ताप रूप होय रही है कि पूर्व श्रीकृष्ण के ब्रज सुन्दरीन के वियोग संबंधी वृत्तांत को हु जाने है ऐसी ऐसी अपनी अनिर्वचनीय महा रस कृपा रूप वियोगात्मक कोई ब्रजांगना द्वार मोकुं यह तो उद्धवजी हैं ऐसे निरन्तर स्पष्ट ही आपने कहवायो है ॥ ऐसे वा महाप्रभु करुणा सागर प्राणनाथ की अपने में करुणा कहा कहा कहुं ॥

तरंग २६ से तरंग ३७ जो सोहाग पहेरामणी के द्वादश तरंग हैं उन द्वादश तरंग में विराजमान जो जो भक्त या ब्रजसुन्दरी हैं उन सब के बारे में श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं :--

वा वा ब्रजसुन्दरीन के महामधुर वे नाम या द्वादस तरंग में विराजमान हैं वा वा समय में कहे जे प्राणनाथ के कानों में हु अमृत सुं हु सर्व प्रकार सुं विशेष ही कोउ अनिर्वचनीय मधुर रस को वर्षा करें हैं तासुं प्राणनाथजी हु जिनको बहुत वार ही उत्कंठा पूर्वक ही रोम हर्ष पूर्वक ही वा वा गान करें हैं जे प्राणनाथ के कंठ में हु अद्भुत गदगद भाव को सिद्ध करें हैं ऐते वा रस भरे नामन को तुम हु आस्वादन करो ॥ अहो ईश्वरेश्वर

प्राणनाथजी ने हु जा नामन को बढ़ रहे बड़े ही आदर सों अपने कानों में रोम हर्ष पूर्वक ही कुंडल जैसे धरे हैं ॥ महा कांती भरे भूषण जैसे हृदय में हु धरे हैं ॥ तथा यह नाम प्राणप्रभु कों प्रिय लगे है यह जानके रस को आस्वादन कर रही रस के जानवे वारी प्राणनाथ की रसना ने हु रटना कियो है यासुं प्रिय को यह नाम अत्यन्त ही प्रिय है यह जानके प्रिय के चतुर भक्त प्रवरन ने हु रोम हर्ष पूर्वक कि बड़े मान पूर्वक कानों में कुंडल रूप सुं धरे हैं तथा या द्वादश तरंगी में या ब्रज सुन्दरीन के सुन्दर मंगलन के धाम रूप नाम विराजें हैं ॥ तथा प्राणनाथजी जा ब्रजांगना के श्रीअंग संबंधी सौभाग्य सों शोभायमान पवन को हु वांछा करें हैं ॥ महद भक्तवर दोनों हाथ सुं अंजली बांधत कि सिर सों दंडवत प्रणामन की परंपरा को करत ही सेवा करत हते कि वैसे अब हु सर्व काल में सेवा करें हैं वैसे आगे हु सेवा करेंगे तासुं तुम हु जागिये आलस्य को छाड़के ही याको बारंबार गान करत करत ही महा रसमय फल को तादृश महद् भक्त निर्यत्न ही प्राप्त भये हैं वा फल को यासुं ही तुम प्राप्त होवोगे ही ॥ यासुं हे भक्तवराः या द्वादश तरंगी को भक्ति प्रेम सों अत्यन्त ही सुनो कि कीर्तन करो कि गावो ॥ तथा अविश्वास कि लौकिकदृष्टि कि अन्याश्रय अरुचि दोष स्फुर्ति कि संदेह कि मिथ्या बुद्धि अनादर पूर्व पक्ष कि मनुष्य दृष्टि कि पाप दुष्ट संग, बुद्धि की असमर्थता कि विषयाशक्ति, अन्य देव में भक्ति कि भगवदीयन में द्रोह कि तुच्छ फल की वांछा कि कलत्र पुत्रादि में आशक्ति कि काम क्रोध मद स्पृहा चाहना कि लोभ ईर्ष्या मत्सर कि रूप जाति कुल सुं अहंकार होय है कि विद्या चतुरता जोवन कि राज सेवा कि धनादि सुं जे अहंकार होय है वा सबन को ही त्याग के या महा रस कृपा सागर रूप द्वादश तरंगी में निमज्जन करो ॥ ईश्वरेश्वर कृपासिन्धु प्राणनाथजी वा भक्तराजन के प्रति जो जो फलदान कियो है फिर हु दान कियो है कि अब हु दान करें हैं कि दान में तृप्त न होयके फिर फिर हु दान करें हैं कि जा फल दान में तृप्त नहीं होय हैं सो अबहु वा भक्तराज कि भक्तसुन्दरीन के सर्वोपर विराजमान नामन को लेवे वारे गायवे वारे कीर्तन करवे वारेन के प्रति हु वैसे ही वा वा फलन कुं प्राणनाथजी दान करेंगे फिर फिर हु दान करेंगे ही ॥ ऐसे महाप्रभु श्री गोकुलाधीश प्राणनाथ के महोच्छव में राज के बढ़ रहे वर्णन के आवेश में

वा प्राणप्रभु के कृपापात्र भक्तन के हु नामादि प्राणनाथ की निमर्याद दयालु कृपाशक्ति के महा विशेष कृपा के आवेश सुं ही मैंने द्वादश तरंगी में कहे हैं विनको कहेके या १३ तेरहमे तरंग सों वाको कछुक स्वरूप मैंने कह्यो है सो वा भक्तन की कृपा सुं ही याको स्वरूप जानवे में आवे है ॥

श्री कल्याण भट्टजी ४४ चतुर्थ चालीस तरंग में आज्ञा करें हैं “कि कितनेक जन जैसे अत्यन्त प्रसिद्ध प्रभाव वारे श्री गोकुलेश प्रभु को तो जानें हैं कि प्राप्त होय हैं ॥ तामें हु भक्तराजन में गुप्त प्रकार सुं विराजमान वा प्रभु को तो नहीं जानें हैं कि नहीं प्राप्त होय हैं ॥ वा प्रभुन के प्रसिद्ध प्रभाव वारे या श्री गोकुलेश लीला सुधासिन्धु रूप प्रबंध को तो जानें हैं कि प्राप्त होय हैं तो हु अत्यन्त प्रसिद्ध भक्तराज रूप या अक्षरन में ही गूढ़ प्रकार सुं विराजमान वा प्रभु को नहीं प्राप्त होय हैं वामें कारण कहा है ॥ वा प्राणनाथ के महा कृपापात्र महद् भगवदीयन की वा महाप्रभु की मनोहर कृपा नहीं है ता पर वैसी कृपा होय तो सहज ही सो महद् भगवदीयन के भीतर विराजमान वा प्रभु को जैसे या अक्षरन में हु विराजमान वा प्रभु को जानें हैं कि यह प्रबंध अक्षर अक्षर हु वैसे लीला परिकर सहित श्री गोकुलेश प्रभु को ही स्वरूपात्मक ही है यह भाव है ॥

तरंग ६७ में श्री कल्याण भट्टजी यह चक्रवर्ती ग्रंथ रत्न को प्रकाश करने के कार्य कारण को आज्ञा करें हैं --

“अहो जा अपनी कृपाशक्ती की प्रार्थना सों यह श्री प्राणनाथजी प्रकट भये हैं ॥ जा कृपाशक्ती सों राज ने वे लीला हु करी हैं वा प्राणनाथजी की कृपाशक्ति ने ही यह ग्रंथ रत्न हु प्रकाश कियो है ॥ या श्री प्राणनाथजी के दासन कि भक्त हैं विनकी हु चरण रेणु के अभिलाषा वारे दासानुदास मैंने तो याको केवल लेखन ही कियो है ॥ सो करुणा के हजारन अर्बन करोड़न समुद्रन सों कि रस के पद्मन खर्बन महा समुद्रन सों जाको हृदय सदैव ही भर्यो है ॥ हे महा दयालु कृपासिन्धु ! रस महासागर या श्री प्राणनाथजी ने ही भवसागर सुं जीवन को भली भांति सों तरायके अपने प्राप्त करवे अर्थ यह अपनी लीला सागर नाम बड़ो दिव्य जहाज स्वयं ही प्रकट कियो है न कि याके लेख मात्र को ही कर रहे सब भांति सों असमर्थ हुं मैंने यह प्रकट

कियो है ॥ जैसे श्री गिरिराज को धारण तो अपनी श्री गोकुल के क्लेशन को निवर्त करवे वारे स्वयं श्री गोकुलेश प्रभुन ने ही कियो है न कि वा श्री गिरिराजजी के नीचे हाथ को दे रहे हु गोप वाल ने कियो है ॥

॥ श्री महाउत्सव को उच्छाह समुह तरंग ४६ ॥

श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं कि अहो प्राणनाथजी को अत्यन्त ही विस्तार वारो यह महोत्सव संबंधी उच्छाह समुह कैसो है कि जाके रंच रंच किणका हु करोड़न समुद्रन के विस्तारन को हु जय करवे वारे हैं कि अत्यन्त गंभीर कि अपार वैसे वे महोत्सव संबंधी उत्साह के किणका प्राणनाथ के असंख्यात भक्तन के मन में प्रवेश करके वा भक्तन सों अनेक मनोरथन कों करावत ही विहार करें हैं ॥ प्राणनाथजी को जो मंदिर है सो अमूल्य करोड़ान रत्न सों हु जटित है ॥ जा मंदिर में चौदह हु भुवनों का राजा श्री गोकुलपति ही विहार करे है ॥

श्री भाग्यराशीजी श्री मोहनभाईजी और श्री गोकुलभाईजी को स्वप

(मांगल्य २९)

या मंगल्यमय गंगाबाई रूप क्षेत्र में प्राणनाथजी के इच्छा विशेष रूप बीज सुं करुणा समुह रूप सुन्दर वर्षा सुन्दर अंकुरित कि पल्लव वारो कि प्रफुल्लित कि वेग ही फलित भयो दाता भोक्ता मनोहर त्रीकमभाई नाम कल्पवृक्ष प्रगट्यो है अहो जा त्रीकमभाई के भाव सुं कि कृती सुं कि स्वभाव सुं कि सेवा सुं कि आलाप के प्रकारन सुं कि विशेष कहां लों कहें जाके सगरे हु प्रकारन सुं महाप्रभु श्री गोकुल जन के जीवन रूप प्रियवर प्राणनाथजी हु अत्यंत प्रसन्न होय हैं रोमांचित हु होय जाय हैं कि प्रसंग प्रसंग में समय समय में ही जाकी वार्तान कुं मंद हास्य पूर्वक गदगद स्वरा होयके ही करें हैं या श्री त्रीकमभाई को पुत्र सर्वोपर विराजमान श्री मोहनभाईजी हैं ॥ प्राणनाथ के रस तथा विश्वास को जो पात्र रूप है जाने विस्तरित करी जो या महाप्रभुन के जन्म महोच्छव में पहिरावनी है वा पहिरावनी के प्रसंग सुं ही सगरे भगवदीय भक्तन के नाम कहवे को प्रारंभ मैंने कियो है सो श्री गोकुल के इन्द्र श्री महाप्रभुजी सर्वोत्कृष्ट वर्णन के बिना कि महद भगवदीय

के अंगीकार बिना विश्व को उद्धार नहीं होय है वामें अन्य तो निरन्तर ही अपकृष्ट हते कि हीन हते महा वस्तु के उपमान नहीं संभवते तासुं यह विचार के ही अपनी उपमा की सिद्धि लिये सदैव ही सबन के ऊपर विराजमान कि सर्वात्म भाव कि शिक्षा में चतुर भक्तन के पालक प्रियवर श्री मोहनभाई नाम भक्तवर को स्वयं ही प्रकट करते भये हैं ॥

अब विशेष कहां लों कहें अहो प्राणनाथजी ने अपनी रस लीला में निरंतर अंगीकार कियो है तासुं जे प्राणनाथजी को अत्यन्त ही प्रिय है वा सबन को तो चित्त यामें प्रवेश नहीं कर शके है ॥ हां विनमें हु महाभाग्य भरी जे दोय कि तीन रत्नजी प्रभृती महाभाग्यवती व्रजरत्न हैं विनको ही चित्त यामें प्रवेश हु करे है प्रसन्न हु होय है कि वा भाव को चाहना हु करे है वा भाव के लिये रुची हु राखे है ॥ किंच या श्री मोहनभाईजी को जो प्रथम वर्णन कियो महान सुं हु महा महान भाव रूप सागरन को हु महासागर कह्यो है वाके सूचन करवे में को साहस कर शके है अहो प्राणनाथजी मे ही प्रवेश करवे वारो जा श्री मोहनभाईजी को सो महान महान भाव सागर सिंधु वैसे सर्वोपर विराजमान प्रथम कहे या श्री गोकुलभाईजी में ही दान किये परम काष्ठापन्न सर्वोपर विराजमान वैसे अनुराग को क्षण क्षण में ही बढ़ावें हैं कि जा श्री मोहनभाईजी को श्री गोकुलभाईजी में प्रेम को बढ़ावें हैं तथा श्री गोकुलभाईजी को जो महान सुं महान महा महा भाव सागर सिंधु वर्णन कियो है ॥ वाके हु सूचना में को साहस कर शके है कि जो वा प्राणनाथजी में ही प्रवेश करवे वारो वा श्री गोकुलभाईजी को महान सुं हु महान भाव सागर सर्वोपर विराजमान प्रथम कहे या श्री मोहनभाईजी में ही दान किये परम काष्ठापन्न सर्वोपर विराजमान वैसे अनुराग को क्षण क्षण में ही बढ़ावे है कि या श्री मोहनभाईजी में ही प्रेम को बढ़ावे है यह भाव है तथा श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं अहो अल्प बुद्धि होयके मैंने जो याके वर्णन में ऐसो साहस कियो है सो महान ही अपराध है वाके निवारण में हु मेरी और मति कि और आश्रय नहीं है किन्तु यह भक्त राजाधिराज श्री गोकुलभाईजी श्री मोहनभाईजी ही मेरो आश्रय है कि तो सगरे भक्तन के चक्रवर्ती हैं कि कृपा रूप अमृत के सागर हैं कि महा मंगल रूप हैं कि जे

अनुपम गुरु रूप हैं कि जिनको तत्व तो केवल प्राणनाथजी ही जानें हैं ॥
 जिनको प्राणनाथजी ने अपने ही सदैव हर्ष के लिये स्वयं ही रच्यो है कि
 सदैव ही सर्व प्रकार सुं ही जे प्राणनाथजी की सेवा में ही आशक्त मन वारे
 हैं कि शुद्ध दैन्य रस के तो स्वरूप ही हैं कि परम यथार्थ ही अनन्यता सुं
 शोभा भरे हैं ॥ प्रभुन के अंतःकरण की वृत्ति को जे अत्यन्त ही जानें हैं ॥
 प्रिय के प्रसन्न करवे वारे गुणन के तो सागर रूप हैं ॥ कि जे प्रतिष्ठा के
 तो अत्यन्त दुःख सुं सहन योग्य जो स्पर्श है वा स्पर्श मात्र सुं हु अत्यन्त
 ही डरपें हैं ॥ कि जे प्राणनाथ के सुख सुं सुखी हैं कि वाके रस सुं ही
 जिनको चित्त चारों ओर ही भर रह्यो है ऐसे पवित्र शुभ कीर्ती वारे श्रीमद्
 गोकुलभाईजी हैं विनकी जे चरण कमल संबंधी रज की किणका है वेहु
 अतुल सौभाग्य के भाव कि समर्था भरे हैं तासुं ही हों वा श्री भाग्यराशी श्री
 गोकुलभाईजी कि श्री मोहनभाईजी के ही चरण कमलन की वैसी रज के
 किणकान को वारंवार ही मन कि वचन कि शरीर सुं प्रणाम करुं हुं ॥
 श्री रमण प्रभु ने श्री भाग्यराश श्री मोहनभाईजी के छट्टे आख्यान में
 गाया है :-

रसिक स्नेही भामते श्रीजी नो दर्शन आपे जी ।
 परम फल देवाने काजे प्रभु रूप उर स्थिर स्थापे जी ॥१३॥
 गोकुलनाथ रसीलो ठाकुर परम रसीले भक्त जी ।
 मुख्य समाज नां महद मुकुटमणी लीला रहस्य अव्यक्त जी ॥१४॥
 जापर करुणा दृष्टि करे ते रस मारग मां वरणे जी ।
 फल सम्पादन अर्थ साधक ये शीश ऊपर रज चरणे जी ॥१५॥
 करे विनती निजजन दासी अपनो विरद विचारी जी ।
 कोऊ नहीं अविलंबन दीन को अयोग्य अंतराय टारो जी ॥१६॥
 श्री कल्लोलजी तरंग १३ में १६ सोलह तरंग हैं और श्री कल्याण
 भट्टजी ने तेरहवां कल्लोलजी का नाम "श्री गोकुलेश सुधासिंधौ निभृत रस
 विहार मये" इस प्रकार दिया है ॥ तेरहवां कल्लोलजी के सातवां तरंग में
 श्री कल्याण भट्टजी आज्ञा करें हैं "या प्रथम वर्णन किये प्रकार वारी सदा
 निर्दोष पूर्ण गुण सागर रस स्वरूप लीला है जे सदा ही निर्दोष कर अपनो
 स्वरूपानंद अनुभव करामें हैं ॥ ऐसी वा श्री गोकुलेश परम पुरुषोत्तम की

लीला में जे अति मंद भाग्य जन दोष को देखे है के अत्यन्त मंद भागीजन श्री गोकुलेश लीला रस सिंधु रूप या ग्रंथ रत्न में हु ता दोष को माने है तासुं करोड़न नरकन के भोगवे वारे ही हैं ॥ जासुं स्वयं दोष भर्यो ही सबन में दोष देखे ही है ॥ पित्त कमला रोग वारे को चंद्र जैसे उज्ज्वल शंख पीरो नजर आवे है ॥

श्री चौदहवां कल्लोलजी में ३० त्रीस तरंग हैं और श्री कल्याण भट्टजी ने नाम "श्रीमद् गोकुलेश लीला सुधासिंधौ श्रीमुख श्रीमदुत्की मुक्तामये" इस प्रकार दिया है ॥ और रसिक भक्त श्री कल्याण भट्टजी श्री महाप्रभुजी की महा कृपा सुं श्रीमुख क्षीर सागर सों प्रकट भये सिद्धांत रत्न रूप चतुर्दशम कल्लोलजी कुं प्रगट कियो है ॥ श्री गोकुलेश प्रभुजी जलधरा में विद्यमान हैं वे भाग्य वारेन में श्रेष्ठ अपने दो तीन भक्त हु आपके पास विराजमान हैं तब हौं -- श्री कल्याण भट्टजी प्रणाम करके विज्ञापना करत भयो हुं ॥ या प्रकार मेरी विज्ञापना कुं सुनके श्री महाप्रभुजी हंसत हंसत श्रीमुख कमल वारे होयके कृपापूर्वक आज्ञा करत भये हैं ॥ ऐसे श्री कल्याण भट्टजी ने जो जो विज्ञापना की है उनका श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा किये श्रीमुख क्षीर सागर सों प्रगट भये सिद्धांत रत्न के संकलन हैं ॥

श्री पंद्रहवां कल्लोलजी में ६६ तरंग हैं और ६७वां तरंग में तो या महा रसमय ग्रंथ रत्न के पठन कि श्रवणादि में संक्षेप सुं ही मनोहर फल कहे हैं ॥ पंद्रहवां कल्लोलजी का नाम "श्रीमद् गोकुलेश लीला सुधा सिंधौ महा महोत्सव मये" इस प्रकार दिया है ॥ और श्री महा उत्सव को इस प्रकार नाम देकर अलंकृत किया है ॥ (१) सगरे उत्सवन के हु मुल रूप, (२) मुख्य जन्म उत्सव, (३) उत्सव राज, (४) महा सुन्दर मनोहर महोच्छव, (५) महा मंगल जन्म ओच्छव, (६) सगरे उत्सवन के चक्रवर्ती रूप, (७) महा उत्सवन के चक्रवर्ती रूप या महोच्छवराज, (८) रस सागर जन्मोत्सव, (९) लोकातीत ही सुन्दरन को चक्रवर्ती रूप यह समय राज ॥

श्री पंडित लोकनाथजी आज्ञा करें हैं "कि महोत्सव रस सागर श्री गोकुलेश प्रभुन के महोत्सव सुधासिंधु को यह पंद्रहमो कल्लोलजी भाषानुवाद में वा महाप्रभुजी की कृपा सों ही पूर्ण भयो है ॥ याके भाषानुवाद में मोकुं

समर्था कासुं होय, यह तो केवल मेरे गुरु श्री गोकुलेशजी के भक्त विरह रूप श्री रमणलालजी महाराज की ही कृपा है तासुं वे अपने प्रिय भक्तन के सहित मेरे श्री गुरुजी ही मोपर सदा प्रसन्न होंय यह प्रार्थना है ॥

पंडित लोकनाथजी ने संवत् १९८१ माघ शुक्ले १४स नो यह भाषानुवाद संपूर्ण कियो और मेरे पिता हीमतलाल ओवरसीयर कालोल वाले ने संवत् १९९४ चैत्र वंदी ५ ने रविवार को गुजराती लिपि में प्रती की ॥ पत्रे के ऊपर आंकणी (गोल लकड़ी) से लाइन करके काली शाही से होल्डर से इतना अच्छा अक्षर से लिखा है कि बिना चश्मे के भी पढ़ सकते हैं ॥ शाही भी ऐसी है कि पूरा पत्रा पानी में रख दिया जाय और निकालें तो शाही वैसी की वैसी रहे है ॥ और दो लाईन के बीच सवा सेंटीमीटर जगह रखी गई है ॥ इतनी साल गुजरने पर कई ६५ पेंसठ साल पीछे भी शाही वैसी की वैसी है ॥ पिताजी ने उतारे हुए ग्रंथ दर्शनीय हैं ॥ अब हमको यह सौभाग्य हिन्दी लिपि में लिखने का सौभाग्य मिला और पूरा ग्रंथ रत्न संवत् २०५८ के अषाढ़ सुद १ को पूर्ण हुआ है सो भी श्री रमण प्रभु की पूर्ण कृपा से हुआ है ॥ और पंडितजी श्री लोकनाथजी ने हमारे पिताश्री के ऊपर ५० से ६० पत्र लिखे हैं उनमें हमें भी बहोत आशीर्वाद लिखा है वो ही कारण से यह कार्य हुआ है ॥ हमारी कोई सामर्थ नहीं है और ऐसे मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है ॥

सब समाज को हम सबका सादर करबद्ध विनय सहित जय जय श्री ॥

ली०---

श्री महामहोत्सव

संवत् २०५९

सन् -- २००२

ता० १०. १२. २००२

वैष्णवदास मोतीलाल कम्बल वाले, मथुरा

गोकुलदास हिम्मतलाल देसाई एडवोकेट, बड़ोदरा

हरकिशनदास पावारी, मुंबई की

दीनता सहित जय जय श्री गोकुलेश

अ. सौ. चन्द्रकान्ता बहेन वैष्णवदास कम्बल वाले

अ. सौ. कान्ता बहेन गोकुलदास देसाई

अ. सौ. ज्योत्सना बहेन हरकिशनदास पावारी के

दीनता सहित सब समाज के वैष्णवों को करबद्ध जय जय श्री गोकुलेश

समर्पण

इति श्री गोकुलेशस्य महोत्सव रसांबुधेः ।
 कल्लोलो पंचदशः प्रसादात् पूर्णति भगात् ॥१॥
 गुरो श्रीरमणेशस्य गोकुलेश सरसां बुधेः ।
 मुहुर्मुहुदे पदांभोजे करुणाएपि संभृते ॥२॥
 तदीय करुणायास्तु तस्यान् त्वा पदांबुजे ।
 भूयो मुहुर्मुहुर्न त्वा भूयो भूयो नमाम्यलं ॥३॥
 वया स्वतः प्रसाधैव सावध्यो नि दृरगः ।
 आज्ञोप्यहं समाकृष्य निजेश रमणेशितुः ॥४॥
 समोदभुपनी तोस्मि करुणेशा समक्षांत
 तथा यथा असधाश्रु निजी कृत्य चतैः
 पाल्यमाना तं पुष्टि तत्त्वा प्रबोधनेः पुष्ट मार्गीस्य
 परम फलं ब्रह्मादि दुर्लभं रसाब्धि गोकुलाधिशांत
 लीलाश्च सुधाधिकः सदानुभाव यद्विश्वस्य
 याति कृपया मुदाः तदीय लीला कल्लोले त्वधि
 फल रसाब्धि वुअ पारेस्वति गंभीरेष्य विदत्वानु
 भावनं तदनुवाद परम फलं स्फूर्ज्जद्र सांबुधिं
 प्राप्रितोनुभवाम्यद्धा फलं पत कि ददामि कं
 भूयो वंदे श्री कल्याण भट्टानां पद पंकजे यैस्य
 कृपःदर्शि लीला सिंधुः कृपाब्धि भिः ॥५॥
 भाग्यराशि पदांभोज रेणुभ्योस्तु नमोमुहुः
 यत्कृपा ता रसांभोधिः सर्वोप्यापिरभूदिह
 अहो त्र चर्णे चर्णे विसंती भावास्धि शशयः
 वर्णनं तन्मस्यःपि केनापि विदुषा भवेत् ॥६॥

क्वाहं अल्पमति कथास्यानुवादनस्य साहसं
यदत्र दर्शितं किं चित्रभोरिछा वशान्मया
तत्रापि कारणं मन्ये करुणां रमणेशितुः
प्रसीदंतु ततस्ते मे गुरवो रमणेश्वराः सस्वकीय
प्रियाश्लं च करुणां परुणा लयाः ॥१॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीला सुधासिंधौ महा महोत्सव मये पंचदश
कल्लोले श्री रमणलाल चरणैक शरण लोकनाथ दर्शिते भाषानुवादे सप्त
षष्टितम स्तरंगः ॥६७॥

श्री गोकुलेश चरणयोः अर्पणामस्तु
प्रिय ता मने नस प्रियः सप्रिय -- श्री पंडित लोकनाथजी
शुभ संवत् १९८१ माघे शुक्ले १४ सनो गुरो श्री रमणाधीश गोकुलेश
प्रिय प्रभो स्नाचितु स्मरणीयं लोकनाथोपि मेस्तिहि ॥१॥
